॥ श्रीः ॥

ईशोपनिषद्

अन्वय पदार्थ और भाषा भावार्थ

सहित

गणाधिपं नमस्कृत्य व्यासं श्रीशंकरं गुरुम् ।
त्रिदां सुखप्रदामृज्वीं करोमीशार्थदीपिकाम् ॥ १ ॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥

अन्वय और पदार्थ-जगत्याम् लोकमें, यत्किञ्च जो कुछभी, जगत् जंगमआदि, (अस्ति) है, इदम्-यह, सर्वम्-सब, ईशा-ईश्वर करके, वास्यम्-व्याप्तरूप से विचारने योग्य है, त्यक्तेन-ममत्वका किया है त्याग जिस में ऐसे, तेन-तिसजगत् करके, भुञ्जीथाः-व्यवहारको भोगो, कस्य-किसी के, स्वित्-भी, धनम्-धनको, मागृधः-मत इच्छाकरो ॥ १ ॥

भावार्थ-आत्मज्ञान को प्राप्त होने में समर्थ अधि-

कारी पुरुषों के प्रति श्रुति उपदेश करती है, जिस प्रकार मृत्तिका से घटपटादि पदार्थ व्याप्त होते हैं तिसी प्रकार यह संपूर्ण जगत्, अन्तर्यामी परमात्मा करके व्याप्त है अर्थात् जिसप्रकार मृत्तिकाही घटादिरूप होती है, मृत्तिका से भिन्न घटादि कदापि नहीं होते हैं तिसी प्रकार नामरूपात्मक यह जो कुछ जगत् प्रतीत होरहा है सो ईश्वर से भिन्न नहीं है, इसकारण संपूर्ण जगत् को ईश्वररूप जानकर "मैं हूँ, मेराहै" वह अमुक है, यह अमुक है, इत्यादि भेद बुद्धिको त्याग देय! यहां शंका होती है, कि-यदि ऐसा करा जायगा तो सांसारिक व्यवहार किस प्रकार चलेगा ? तहां कहते हैं कि-जिस प्रकार स्वप्न का व्यवहार होता है तिसी प्रकार आसक्तिको त्याग कर सांसारिक व्यवहार को चलावै, किसी के धन की इच्छा न करै अर्थात् व्यवहार चलनेमात्रके अर्थ आसक्ति रहित होकर सांसारिक व्यवहार में प्रवृत्त होय नामरूपात्मक जगत् में सत्यत्व बुद्धि को त्यागकर सबको आत्मरूपही जानै ॥१॥

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः । एवंत्वयिनान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यतेनरे २

अन्वय और पदार्थ-इह-इस संसार में, कर्म्माणि-कर्म्मों को, कुर्वन्-करताहुआ, एव-ही, शतम्-सौ, समाः-वर्ष, जिजीविषेत्-जीवित रहने की इच्छा करै, एवम्-इस प्रकार, त्वयि-तुझ, नरे-पुरुष के विषै, कर्म्म-कर्म्म, न-नहीं, लिप्यते-सम्बन्ध को प्राप्त होता है, इतः-इस से, अन्यथा-विपरीत, न-नहीं, अस्ति-है, ॥ २ ॥

भावार्थ-साधन न होने के कारण आत्मज्ञान में असमर्थ पुरुषों के प्रति, श्रुति कर्म्म का उपदेश करती है कि पुरुष इस संसार में विहित कर्म्मों को निष्काम (आसक्ति रहित) होकर करता हुआ ही सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहने की इच्छा करै, इसप्रकार विहित कर्म्मों के करने पर भी पुरुष में कर्म्म का सम्बन्ध नहीं होगा अर्थात् उस कर्म्म का फल नहीं भोगना पड़ैगा, बन्धनरूप कर्म्म से छूटने का इससे दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥ २ ॥

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनोजनाः ॥३॥

अन्वय और पदार्थ-असुर्य्या नाम-तमोगुणप्रधान

पुरुषों के योग्य, ते-प्रसिद्ध, अन्धेन-गाढ, तमसा-अज्ञान करके, आवृताः-व्याप्त, लोकाः-लोक, (सन्ति) हैं,तान्-तिनलोकोंको, ते-वह, प्रेत्य-मरणको प्राप्त होकर, अभिगच्छन्ति-जाते हैं, ये-जो, के-कोई, च-भी, आत्महनः आत्मघाती, जनाः-प्राणी,(सन्ति)हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—अब जो पुरुष सकाम होकर कर्म करने में प्रवृत्त होते हैं तिन के प्रति श्रुति उपदेश करती है,कि आत्मा के विषे प्रीति करने वाले जो विद्वान् पुरुष हैं तिनका नाम सुर है और तिन से भिन्न अज्ञानी पुरुष असुर कहाते हैं, उन ब्रह्मज्ञानरहित-असुरनामक पुरुषों को प्राप्त होनेवाले, पाप पुण्यरूप कर्मों के फलरूप जो लोक हैं वह असुर्य्य कहाते हैं,वह असुर्य्य नामक लोक, आत्मा के शुद्धस्वरूप को आवरण करने वाले अज्ञानरूप गाढ़ अन्धकार से व्याप्त हैं, उन लोकों में वह पुरुष जाते हैं कि जो अनेकों जन्मों में प्राण निकलने के समय "मैं शुभ अशुभ कर्मोंका करनेवाला हूं, मेरा मरण होता है" ऐसे निश्चय को न त्यागकर आत्माका हनन करते हैं; नित्य शुद्ध बुद्ध आत्माके विषे 'मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं' इत्यादि आरोपकरनाही आत्माका हनन कहाताहै क्योंकि शुद्धवस्तु में कलंक लगाना ही उसका हनन है ॥ ३ ॥

अनेजदेकोमनसोजवीयोनैन-
द्देवाआप्नुवन् पूर्वमर्षत् । तद्धाव-
तोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो-
मातरिश्वादधाति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ–अनेजत्-अचल, एकः-सदा एकरस, मनसः-मनसे, जवीयः-अधिक वेगयुक्त, (मनसः)-मनसे, पूर्वम्-पहिले, अर्षत्-जाताभया, (अतः) इसकारण, एनत्-इस आत्मस्वरूपको, देवाः–इन्द्रियें, न-नहीं, आप्नुवन्–प्राप्तहुई, तिष्ठत्-गमन न करताहुआ, तत्-वह आत्मतत्व, धावतः-शीघ्र गमन करने वाले, अन्यान्–मन आदिकोंको, अत्येति-अतिक्रमण करके आगे जाता है, मातरिश्वा प्राणवायु, तस्मिन्-तिस आत्मतत्वके होते सतेंही, अपः-अपनी, चेष्टाके हेतु जलोंको, दधाति–ग्रहण करताहै ॥ ४ ॥

भावार्थ-जिस आत्माका कर्मासक्त पुरुष हनन करतेहैं तिस आत्माके स्वरूपका श्रुति वर्णन करै है, कि वह आत्मा अचलहै, अर्थात् क्रिया करके रहितहै, सदा एकरसहै, मनसेभी अधिक वेगवालाहै, क्योंकि मन जिस जिस पदार्थ का संकल्प करताहै, उस संक-

रूपके द्वारा तिस पदार्थ में प्राप्त होताहै और तिन संपूर्ण पदार्थोंमें यह आत्मा मनके वेगयुक्त गमनसे पहिलेही व्याप्तहै; तिस आत्माको नेत्रादि इंद्रियें नहीं प्राप्त होतीहैं क्योंकि जहां २ इंद्रियें जातीहैं तहां२यह आत्मा आगेही विद्यमान् है,और वह आत्मा सुमेरु आदिकी समान निश्चल होकरभी शीघ्र गमन करने वाले मन आदिको उल्लंघन करके आगे पहुँचजाताहै, प्राणवायु (हिरण्यगर्भरूप समष्टिवायु) तिस आत्मस्वरूपके विद्यमान् रहते रहते हुएही चेष्टाके हेतुभूत जलोंको धारण करताहै अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियों के चेष्टितोंको करता है क्योंकि इस संसार में जितनी चेष्टा हैं वह चेतन आत्मस्वरूपके विना कदापि नहीं होसक्तीं।

तदेजतितन्नैजति तद्दूरे तद्वदन्तिके तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—तत्—वह आत्मस्वरूप, एजति चलता है, तत्—वह आत्मरूप, न—नहीं,एजति-चलता है, तत्-वह आत्मस्वरूप, दूरे—दूर है,तद्वत्-तिसी प्रकार, अन्तिके-समीप है, तत्—वहआत्मस्वरूप, अस्य-इस, सर्वस्य सम्पूर्ण के, अन्तः-भीतर है, तत्-वह आत्मस्वरूप,

उ-ही, अस्य-इस,सर्वस्य-सबके,वाह्यतः-वाहर है॥५॥

भावार्थ–फिरभी आत्मस्वरूप का ही वर्णन करते हैं, कि आत्मा का स्वरूप अति आश्चर्य है, क्योंकि वास्तव में गमनादि क्रिया रहित भी आत्मा गमनादि क्रियाओं को करताहै, अर्थात् निरुपाधिक आत्मस्वरूप सर्वथा गमनादि रहित है और देहादि उपाधिके कारण भ्रान्ति से आत्मा में गमनादि क्रिया प्रतीत होतीहै; और अज्ञानी पुरुषों के चित्तों से यह आत्मा अत्यन्त दूरहै और ज्ञानी पुरुषों का तो स्वरूपभूत होनेके कारण अत्यन्त समीप है, और वह आत्मस्वरूप इस संपूर्ण जगत्के वाहर भीतर परिपूर्णहै॥५॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजिगुप्सते॥ ६॥

अन्वय और पदार्थ–यः-जो, सर्वाणि-संपूर्ण,भूतानि-प्राणियों को, आत्मनि–आत्मा के विषैं, एव-ही,आत्मानम्-आत्मा को,च-भी,सर्वभूतेषु–सर्वभूतों में, अनुपश्यति–देखता है,ततः-तिससे, [आत्मा] आत्मा, [आत्मानम्] आत्मस्वरूप को, न-नहीं, विजिगुप्सते-गुप्त रखता है॥६॥

भावार्थ—अब आत्मस्वरूप के यथार्थज्ञान का फल वर्णन करते हैं, कि-जो तत्त्व जिज्ञासु पुरुष, ब्रह्मादि पिपीलिका पर्य्यन्त सब प्राणियों को अपने आत्मा में कल्पित हुए देखता है और उनसब प्राणियों में एक अपने आत्मा कोही देखताहै अर्थात् सब प्राणियोंमें भेददृष्टि न कर के सर्वत्र एक आत्मस्वरूपकोही परिपूर्ण जानता है, तिस जिज्ञासु पुरुषसे आत्मा अपने स्वरूपको गुप्त नहीं रखताहै अर्थात् उस पुरुषको आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होजाता है ॥ ६ ॥

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—विजानतः-विशेष करके आत्म तत्वज्ञानीके, यस्मिन्-जिसकालमें, सर्वाणि-सब, भूतानि-प्राणी, आत्मा-आत्मा, एव-ही, अभूत्-हुआ, एकत्वम्-आत्मा की एकता को, अनुपश्यतः-देखतेहुए तिस पुरुष को, तत्र-तिसकाल में, मोहः-मोह, कः-कौन है, शोकः-शोक, कः-कौन है ॥ ७ ॥

भावार्थ—अब तत्वज्ञान का फल कहते हैं, कि जिस

तत्वज्ञानी की ज्ञानावस्था में सम्पूर्ण स्थावर जंगम प्राणी आत्मस्वरूप प्रतीत होने लगते हैं अर्थात् जिस विवेकी पुरुष ने गुरु और शास्त्र के उपदेश से सब आत्मस्वरूपही है, ऐसा निश्चय कर लिया है, उस विवेकी पुरुषको तिस आत्मज्ञानदशामें न आवरणरूप मोह होताहै और न विक्षेपरूप शोक होताहै, क्योंकि शोक मोहका कारण द्वैतवासना है सो उस समय होतीही नहीं है ॥ ७ ॥

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषीपरिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—सः-वह तत्वज्ञानी, शुक्रम्-प्रकाशरूप, अकायम्-अशरीरी, अव्रणम्-अखण्ड, अस्नाविरम्-नाडियों करके रहित, शुद्धम्-निर्मल, अपापविद्धम् पापों के संसर्ग करके रहित, (आत्मानम्)—आत्मस्वरूप को, पर्य्यगात्-प्राप्त होता भया, (सः) वह, कविः त्रिकालज्ञ, मनीषी-अन्तर्यामी, परिभूः सर्वो-

त्तम, स्वयंभूः-अकारण ईश्वररूप, (सन्)-होताहुआ शाश्वतीभ्यः-अनन्त, समाभ्यः-वर्षों करके, याथातथ्यतः यथास्वरूप, अर्थान्-पदार्थों को, व्यदधात्-करताभया॥८

भावार्थ-पूर्वोक्त तत्त्वज्ञानी के ज्ञानका फल वर्णन करते हैं कि-जो पूर्वोक्तरीति के अनुसार आत्मा को देखता है वह प्रकाशरूप निर्मल विज्ञानघनानन्द स्वभाव आचिन्त्यशक्ति अशरीरी अखण्ड स्थूलदेह रहित शुद्ध क्लेशकर्म्मविपाकाशयादि पापों से रहित ब्रह्म को प्राप्त होता है, तदनन्तर त्रिकालज्ञ अन्तर्यामी सर्वोत्तम अकारण ब्रह्मरूप होकर अनेकों वर्षों में पदार्थों के वास्तविकस्वरूप को प्राप्त होता है अर्थात् मैं ही अनेकों प्रकार के विवर्तरूपसे सब व्यवहारों को करता था ऐसा निश्चय करता है॥ ८॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्या-मुपासते ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-ये-जो, अविद्याम्-अविद्या के कार्य्यरूपकर्म्म को, उपासते-सेवते हैं, (ते)-वह, अन्धम्-गाढ, तमः-अज्ञान को, प्रविशन्ति-प्राप्त होते हैं, ते-वह, ततः-

तिससे, भूयइव-अधिक, तमः-अज्ञान को, [प्रविशन्ति] प्राप्त होते हैं, ये-जो, विद्यायाम्-उपासनामें, उ-ही, रताः-तत्पर हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ-जो अविद्या कहिये स्वर्गनिमित्तक आदि सकाम कर्मों को करते हैं वह अज्ञानरूप गाढ़ अन्धकार को प्राप्त होते हैं और जो विद्या कहिये अनेकों देवताओं की उपासना में ही तत्पर रहते हैं और आत्मज्ञान की ओर को किञ्चिन्मात्रभी दृष्टि नहीं देते हैं वह और भी अधिक अज्ञानरूप तमको प्राप्त होते हैं, क्योंकि-जिस देवता की उपासना करीजाती है उस देवता के वरदान से प्राप्तहुए ऐश्वर्य से संसार में और भी अधिक आसक्ति होती है, इस कारण निष्काम कर्मों के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धिपूर्वक आत्मज्ञान की प्राप्ति का उपाय करना ही कल्याणकारक है ॥ ९ ॥

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽऽन्यदाहुरविद्यया । इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-विद्यया-विद्या करके, अन्यत् और, एव-ही, (फलम्)-फल, आहुः-कहते हैं, अविद्यया-अविद्या के कार्यरूप कर्म के द्वारा, अन्यत्-

और, आहुः-कहते हैं, इति-ऐसा वचन, धीराणाम्-व्याख्याकारों का, शुश्रुम-सुना है, ये-जो, नः-हमारे अर्थ, तत्-विद्या और अविद्या के फल को, विचचक्षिरे-कहतेहुए ॥ १० ॥

भावार्थ-विद्या कहिये उपासना से देवलोकादि प्राप्तिरूप अन्यफल होता है और अविद्या कहिये सकाम कर्म्मों के करने से स्वर्गलोक की प्राप्तिरूप अन्यफल होता है ऐसा व्याख्या करनेवाले ऋषियों का कथन है, यह वार्त्ता हमारे अर्थ ब्रह्मज्ञान का उपदेश करनेवाले आचार्य्यों ने कही है इसकारण जिनको आत्मज्ञान की इच्छा है उनको उचित है कि निष्कामकर्म्मों के द्वारा चित्तकी शुद्धि करके ब्रह्मकी प्राप्ति का उपाय करैं, क्योंकि सकाम कर्म्मों के करने से अथवा अनेक देवों की उपासना के करने से ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति कदापि नहीं होसक्ती ॥ १० ॥

विद्याञ्चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-यः जो, तत्-उन, उभयम्-दोनों, विद्याम्-विद्याको, च और, अविद्याम्-अविद्या

को, सह साथ, वेद-जानताहै, सः-वह, अविद्यया-नि-
ष्कामकर्म के द्वारा,मृत्युम्-मृत्युको,तीर्त्वा-तरकर,विद्यया-
विद्या करके, अमृतम्-अमरपनेको,अश्नुते-प्राप्तहोताहै ११

भावार्थ-जो विवेकी पुरुष विद्या और अविद्या
दोनों को एक साथ करता है अर्थात् जो बुद्धिमान्
पुरुष स्वधर्म्मबुद्धि से पुत्र कलत्र धन आदि की का-
मना को न करकै कर्म्मानुष्ठान करता है अथवा चित्त
शुद्धि के निमित्तही उपासना करता है वह निष्काम
कर्मों के द्वारा इस संसार के अल्पकाल में ही वार-
वार प्राप्त होने वाले मृत्युको प्राप्त न होकर उस नि-
ष्काम उपासना के प्रभाव से अमरपने को प्राप्त हो
जाता है ॥ ११ ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भू-
तिमुपासते। ततो भूय इव ते तमो-
य उ सम्भूत्याꣳ रताः ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-ये-जो । असम्भूतिम्-
माया को । उपासते-सेवते हैं । ते-वह । अ-
न्धम्-गाढ । तमः अज्ञानरूपतमको । प्रविशन्ति-
प्राप्तहोते हैं । ये-जो । सम्भूत्याम्-माया के कार्य्य
रूप हिरण्यगर्भ के विषय । उ-ही । रताः-तत्पर

हैं । ते- वह । ततः-तिससे । भूयइव-अधिक । तमः-अज्ञानरूप तम को । प्रविशन्ति-प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ-जो पुरुष सम्भूति कहिये अव्याकृत कारणरूप माया की उपासना करते हैं अर्थात् माया में लीन रहते हैं वह गाढ अन्धकार रूप अज्ञान को प्राप्त होते हैं अर्थात् परम अज्ञान युक्त योनियों में जन्मधारण करते हैं जो पुरुष सम्भूति कहिये हिरण्यगर्भ नामक माया के कार्य्य की उपासना करते हैं अर्थात् माया के रचे हुए अविवेकादि गुणों की उपासना करते हैं वह अत्यन्तही गाढ अन्धकाररूप अज्ञान को प्राप्त होते हैं अर्थात् अनेकों जन्मपर्य्यन्त जहां किसी प्रकार ज्ञान का साधन न बनसकै ऐसी योनियों में भ्रमते रहते हैं ॥

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् । इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-सम्भवात्-माया से । अन्यत्-और । एव-ही । आहुः-कहते हैं । असम्भवात्-माया के कार्यरूप हिरण्यगर्भ से । अन्यत्-और । आहुः-कहतेहैं इति-ऐसा वचन । धीराणाम्-आचार्यों का । शुश्रुम-

सुनते हैं । ये-जो । नः-हमारे अर्थ । तत्-तिस फलको विचचक्षिरे-वर्णन करतेहुए ॥ १३ ॥

भावार्थ-माया के कार्य्यरूप हिरण्यगर्भ की उपासना से अणिमादि ऐश्वर्यरूपफल की प्राप्ति होती है और अव्याकृत कारणरूप माया की उपासना से माया में लयरूप फल की प्राप्ति होती है ऐसा बुद्धिमान् आचार्यों का वचन हमने सुना है जो आचार्य हमारेअर्थ सम्भव और असम्भव का फल वर्णन करते भये १३

सम्भूतिञ्च विनाशं च यस्तद्वेदो-भय ॐ सह विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-यः-जो, सम्भूतिम्-कार्य्यरूप हिरण्यगर्भको, च-और, विनाशम् कारणरूप प्रकृति को, उभयम् दोनों को, सह-साथ । वेद-जानता है, विनाशेन-प्रकृति के द्वारा । मृत्युम्-मृत्युको, तीर्त्वा-तरकर सम्भूत्या-हिरण्यगर्भरूप कार्य्यकी उपासना से, अमृतम्-अमरपने को, अश्नुते-प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

भावार्थ-जो पुरुष विनाश कहिये सम्पूर्ण कार्य्यों के विनाश की आश्रय प्रकृति को इस बुद्धि से सेवता

है कि-जिस प्रकार पुत्रको पिताकी सेवा करना आ-वश्यक है तिसी प्रकार प्रकृति की उपासना सबको करना उचित है और सम्भूति कहिये कार्य्यरूप हिरण्यगर्भ की भी (स्वधर्म्म है) इस बुद्धि से उपासना करता है वह पुरुष अनैश्वर्य अधर्म्म कामादिरूप मृत्यु को प्राप्त न होकर देवरूप को प्राप्त होने के कारण अमरपने को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

हिरण्मयेन पात्रेणसत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-हिरण्मयेन- प्रकाशमय पात्रेण-पात्राकार तुम्हारे मण्डलसे, सत्यस्य-सत्यस्वरूप उपास्य-देवता का, मुखम्-तिसकी प्राप्ति के मार्गका द्वार, अपिहितम्-आच्छादित है, पूषन्-हेसूर्य्यदेव, तत् तिस आच्छादन को,सत्यधर्म्माय-उपास्य देवका। दृष्टये-दर्शन होनेके अर्थ। त्वम्- तुम। अपावृणु-पृथक् करो ॥१५ ॥

भावार्थ-चित्तशुद्धि के निमित्त अथवा स्वधर्म जानकर कर्म्म तथा उपासना इन दोनों को करकै तत्वज्ञान की इच्छा करने वाला अधिकारी पुरुष मरणकाल में आदित्य भगवान् की प्रार्थना करै है कि-हे

सूर्यभगवन् ! आदित्यमण्डल में जो सत्यपरमात्मरूप-स्थितहै सो पात्र स्वरूप आप के मण्डलके प्रकाशसे आच्छादित है इसकारण उसका दर्शन नहीं होय है अतः आपसे प्रार्थना है कि–मुझ सत्यरूप परमात्माके उपासकके निमित्त विस आच्छादनको पृथक् करिये जिस से मैं सत्यरूप परमात्माका दर्शनकरूं ॥ १५ ॥

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह तेजो यत्ते रूपंकल्यागतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ–पूषन्-हे पुष्ट करनेवाले। एकर्षे-हे प्रधानऋषे। यम–हे नियामक। सूर्य–हे प्रेरक। प्राजापत्य–हे प्रजापति के पुत्र। रश्मीन्–किरणों को, व्यूह–पृथक् करो। समूह–संकोचित करो, तेजः–ज्योतिःस्वरूप। कल्याणतमम्–अतिकल्याणकारक। यत्–जो। ते–तुम्हारा। रूपम्–रूपह। तत्-उस। ते-तुम्हारे। [रूपम्] रूपको। पश्यामि-दर्शन करूंगा। यः-जो। असौ–यह। पुरुषः-मण्डलस्थपुरुष है। सः वह, असौ-यह, अहम्-मैं।अस्मि-हूं॥ १६॥

भावार्थ–इस मंत्रसे भी मरणोन्मुख अधिकारी प्रार्थना ही करै है, कि-हे जगत् का पालन करने वाले हे भगवानरूप ! अथवा हे एकाकी गमन करने वाले ! हे सबके नियामक! हे प्रेरक! अथवा रसों को स्वीकार करने वाले ! हे प्रजापति के पुत्र ! आप अपनी किरणों को दूर करो और संकोचित्त करो, जिससे मैं ज्योतिः स्वरूप कल्याणकारक तुम्हारे रूपका दर्शन करूं, हे सूर्य भगवन् ! मैं आदित्यमण्डल में स्थित पुरुषरूपहूँ, ज्योतिः स्वरूपही मेरा वास्तविक रूपहै ॥ १६ ॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ॐ क्रतोस्मर कृतꣳस्मर क्रतोस्मर कृतꣳ स्मर ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ–वायुः–मेरा प्राणवायु, अमृतम्-मरणरहित । अनिलम्-पूर्णवायुको । [गतः] प्राप्तहोय । अथ-और । इदम्–यह । शरीरम्-शरीर । भस्मान्तम्-भस्मरूप होय, क्रतो-हेमन, ॐ-ॐकारको स्मर-स्मरणकर । क्रतो-हेमन । कृतम्–करेहुएको, स्मर-स्मरणकर, कृतम्-कर्मको, स्मर- स्मरणकर ॥ १७ ।

भावार्थ-यही मरणोन्मुख उपासक सूर्य भगवान् की स्तुति करता है, कि शुभ मरण को प्राप्त होतेहुए का प्राणवायु पूर्णवायुको प्राप्तहोय और स्वप्न तथा परलोकके भोगो का भोक्ता यह लिंग शरीर स्थूल शरीर से बाहर होकर,अपने कारण मात्र को प्राप्त होय और यह दृश्यमान अस्थिमांसमय शरीर अन्त में भस्म होय। अब वह उपासक पुरुष अपने संकल्पविकल्प करने वाले मन के प्रति कहै हैं, कि हे मन ! ओंकार का स्मरण करो, अर्थात् जिस समय के अर्थ ओंकार की आयुभर उपासना करी है वह समय अब आगया इसकारण ओंकार का स्मरण कर। और हेमन ! अपने करे हुए कर्मको स्मरण करो ॥ १७ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ—अग्ने-हे अग्निदेव, अस्मान्—हमको। राये-फल भोगनेके निमित्त। सुपथा-श्रेष्ठमार्गसे-नय-लेजाओ। देव-हे अग्निदेव! नः—हमारे। विश्वानि-

सम्पूर्ण। वयुनानि-कर्म्मोंको, विद्वान्-जानतेहो। जुहुराणम्-फल प्राप्तिमेंप्रतिबन्धक,एनः-पापको, अस्मत्-हमसे, युयोधि-पृथक् करो। ते-तुम्हारे अर्थ। भूयिष्ठाम्-बहुत से-नमउक्तिम्-नमस्कारके वचनोंको, विधेम करतेहैं॥१८॥

भावार्थ-अब अग्नि देवताका उपासक अमृतत्वकी प्राप्ति के निमित्त अग्निदेव की प्रार्थना करै हैं कि-हे अग्ने! तुम हमारे सब शुभ कर्मों को जानतेहो इस कारण आपसे प्रार्थना है कि-हमको सुखभोगों के अर्थ श्रेष्ठमार्ग से ले चलो और फलप्राप्ति के प्रतिबन्धक हमारे पापों को दूर करो, हम उपासक आप के अर्थ अनेकों प्रणाम करते हैं॥ १८॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

इति समाप्त.

विक्रयार्थ पुस्तकैं ।

योगमहिमा.

जिस में योगशास्त्र की बड़ी कठिन २ बातो को ऐसी सरलभाषा में लिखा है कि हरएक पुरुष सहज में ही समझजाय, की० ~)॥

पुनर्जन्मविचार.

आजकल बहुत से पुरुषों को सन्देह रहता है कि दूसरा जन्म होता है या नहीं, इस विषय का ही विचार इस पुस्तक में किया है, की० ~)॥

दीर्घजीवनोपाय.

इस पुस्तक में दीर्घजीवन होने की रीति योगशास्त्र के अनुसार सरलभाषा में लिखी गई है, की० ~)॥

पुस्तकैं मिलने का पता.

शिवलाल गणेशीलाल

लक्ष्मीनारायण प्रेस-मुरादाबाद.